किरातार्जुनीय महाकाव्य में सन्निहित ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्वों का विश्लेषण

महेन्द्र कुमार शर्मा*
डॉ.देवेश कुमार मिश्र**

सारांश -

संस्कृत साहित्य में तीन अत्यन्त विशाल आकृति वाले महाकाव्यों को बृहत्त्रयी की संज्ञा दी गयी है। बृहत्त्रयी में किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम् इन तीन महाकाव्यों को सम्मिलित किया जाता है। बृहत्त्रयी महाकाव्यों में अन्तर्निहित इन तीन महाकाव्यों में से प्रथम किरातार्जुनीय महाकाव्य की रचना महाकवि भारवि ने की है। द्वितीय शिशुपालवध महाकाव्य महाकवि माघ द्वारा विरचित है। अन्तिम नैषधीयचरित महाकाव्य महाकवि श्रीहर्ष द्वारा लिखित है। संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी काव्यसमूह में कवि भारविकृत किरातार्जुनीय को प्रथम स्थान प्राप्त है। संस्कृत साहित्य के इतिहास में महाकवि कालीदास की वैदर्भी रीति के बाद छठी शताब्दी में एक नई रीति विकसित हुई। पांचाली नामक इस रीति के प्रवर्तक कवि भारवि हैं। इनको संस्कृत साहित्य के प्रौढ कवियों में अन्यतम माना जाता है। भारवि का कवित्व अर्थगौरव के कारण प्रसिद्ध है - '**भारवेरर्थगौरवम्**'। यद्यपि भारवि को मितभाषी समझ जाता है, तथापि यह समझना होगा कि शब्दों में विशिष्ट अर्थ प्रतिष्ठापित करने में वे उतनी ही अधिक शक्ति का प्रयोग करते हैं। इसीलिए किरातार्जुनीय महाकाव्य की भाषा को अत्यंत चित्ताकर्षक माना जाता है।

प्रस्तुत शोधपत्र में बृहत्त्रयी महाकाव्यों में से महाकवि भारवि द्वारा विरचित **किरातार्जुनीय** महाकाव्य का ज्योतिषशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन किया गया है। जिसके अन्तर्गत इस महाकाव्य में उल्लिखित विविध ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्वों का संकलन किया गया। तत्पश्चात् ज्योतिषशास्त्रीय के विभिन्न ग्रन्थों में निहित सिद्धान्त एवं लक्षण के आधार पर उनका विश्लेषण उपस्थापित किया गया है।

कुञ्जी शब्द - संस्कृत साहित्य, महाकाव्य, बृहत्त्रयी, किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम्, नैषधीयचरितम्, भारवि, माघ।

प्रास्ताविक

किरातार्जुनीय महाकाव्य को महाकवि भारवि की एकमात्र काव्यरचना माना जाता है। इसमें अर्थगांभीर्य विशेष रूप से उपस्थित है। यह महाकाव्य भारवि की विचित्र कल्पना के कारण विलक्षण माना जाता है। किरातार्जुनीय में वीररस की प्रधानता है। इसके अतिरिक्त अंगीरस के रूप में अन्य रस भी विद्यमान हैं। इसमें महाकवि भारवि ने पांचाली रीति का प्रयोग किया है। किरातार्जुनीय महाकाव्य में चौबीस छंद एवं अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। संस्कृत साहित्य के बृहत्त्रयी महाकाव्यों में किरातार्जुनीयम् का प्रथम स्थान माना गया है। महाभारत के कथा प्रसङ्ग का कवि ने अपनी अद्वितीय काव्य प्रतिभा से चमत्कारिक वर्णन किया है। जिसमें अपने भाइयों और पत्नी द्रौपदी के साथ अज्ञातवास यापन कर रहे अर्जुन द्वारा पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति हेतु इन्द्रकील पर्वत पर जाकर भगवान् शिव की तपस्या करना, परीक्षा हेतु भगवान् शिव का किरात वेश में अर्जुन के सम्मुख उपस्थित होना, फिर दोनों में शिकार के लिए भीषण युद्ध होना, एवं अन्तिमतया अपने पराक्रम से भगवान् शिव को प्रसन्न करके अर्जुन द्वारा वरदान स्वरूप पाशुपत अस्त्र प्राप्त करने का प्रसङ्ग इस महाकाव्य की मुख्य कथावस्तु का आधार है। महाभारत के इस वृत्तान्त को ही आधार मानकर भारवि ने विशालकाय किरातार्जुनीय महाकाव्य को अठारह सर्गों में विभाजित किया गया है। जो कि नीति एवं व्यवहार सम्मत उपदेशों से अलंकृत है। किरातार्जुनीय की उपर्युक्त कथावस्तु को मूलतः महाभारत के वन पर्व से उद्धृत किया गया है, किन्तु इस महाकाव्य की कथा का विकास महाकवि भारवि ने स्वयं अपनी प्रतिभा से किया है। अर्जुन और किरात वेशधारी भगवान् शिव के साथ युद्ध विषयक प्रसंग को आधार बना कर महाकवि भारवि ने अपने काव्य कौशल से चमत्कृत कर इस काव्य की रचना की है। हालांकि इस महाकाव्य में वर्णित कई प्रसंग महाभारत में उपलब्ध नहीं होते हैं। इन प्रसङ्गों की रचना हेतु भारवि ने अपने काव्य कौशल का प्रयोग किया है। वनेचर, युधिष्ठिर, द्रौपदी एवं भीम के वचनों में भारवि के राजनैतिक ज्ञान का प्रतिबिंब स्पष्टतया दृष्टिगत होता है।

महाकवि भारवि का अर्थगांभीर्य उनके द्वारा किए गए प्रकृति वर्णन में भी प्राप्त होता है। यद्यपि भारवि महाकवि कालिदास के समान प्रकृति को मानवीय भावों का संदेशवाहक न बना पाए हो, तथापि किरातार्जुनीय में वर्णित प्रकृति से यह स्पष्ट होता है कि रस, कल्पना और अर्थगौरव के संदर्भ में अन्य किसी भी काव्य से अत्यंत उत्कृष्ट है। कालिदास के समान ही भारवि भी जड़-चेतन का एकत्व स्वरूप वर्णन करते हैं। किरातार्जुनीय में भारवि एक स्थल पर शिशिर ऋतु वर्णन के प्रसंग में कवि प्रकृति और नवयुवती की सुन्दरता का वर्णन करते हुए कहते हैं -

कतिपयसहकारपुष्परम्य-
स्तनुतुहिनोऽल्पविनिद्रसिन्दुवारः।

सुरभिमुखहिमागमान्तशसी
समुपययौ शिशिरः स्मरैकबन्धुः ।।[1]

किरातार्जुनीय की सभी टीकाओं में में आचार्य मल्लिनाथ द्वारा विरचित घंटापथ नामक टीका सर्वाधिक लोकप्रिय एवं प्रचलित है। महाकवि भारवि की कठिन पदावली का निबन्धन करना दुष्कर सा प्रतीत होता है। इसलिए आचार्य मल्लिनाथ ने काव्यरसिकों के लिए सरलतापूर्वक अर्थज्ञापन हेतु घण्टापथ टीका का निर्माण किया।[2] किरातार्जुनीय की अन्य प्रसिद्ध टीकाओं शब्दार्थदीपिका सर्वाधिक लोकप्रिय टीका मानी जाती है। इस टीका के रचयिता चित्रभानु कहे जाते हैं। टीकाकार चित्रभानु का समय अज्ञात है। शब्दार्थदीपिका नामक टीका में किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रथम तीन सर्गो की ही व्याख्या की गयी है।

भारतीय ज्ञान परंपरा में ज्योतिष एक प्राचीन शास्त्र माना जाता है। जिसका उल्लेख वैदिक काल के आरम्भ में ऋग्वेद से आरंभ होकर वैदिक वांग्मय में कल्पसूत्रों तक सुविस्तृत रूप से किया गया है। वेद पुरुष के नेत्रस्वरूप होने से ज्योतिष एक वेदांग शास्त्र के रूप में भी सुविख्यात है। ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा का स्वरूप विभिन्न कालों में परिवर्तित एवं व्यापक होता आया है। आरंभिक काल में इसे केवल ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि के स्वरुपादि के ज्ञान कराने वाले शास्त्र के रूप में जाना जाता था - **ज्योतिषां सूर्यादिग्रहाणां बोधकशास्त्रं ज्योतिषशास्त्रम्।**

ज्योतिष शास्त्र आज ही नहीं अपितु अपने आरम्भ काल से ही बहुत प्रभावशाली रहा है। काल क्रमानुसार उसमें कालांतर में कुछ भेद उत्पन्न हुए हैं, जिन्होंने जगत् में ज्योतिष के प्रभाव को और भी अधिक व्यापक किया है। ज्योतिष शास्त्र का ध्येय मानव एवं प्रकृति के प्रत्येक पदार्थ के अणुतम भाग का परिशीलन एवं विश्लेषण करना होता है। ज्योतिष शास्त्र प्राचीनकाल से ही मनुष्य, मानवीय सभ्यता का एवं उसके इतिहास से सम्बद्ध रहा है। मानवीय सभ्यता के विकास के साथ साथ ही ज्योतिष शास्त्र के अंतर्गत मनुष्य जीवन के आंतरिक एवं बाह्य प्रवृत्तियों से संबंधित अध्ययन भी आरंभ हुआ। इस प्रकार ब्राह्मण एवं आरण्यकों के समय में ज्योतिष शास्त्र की यह परिभाषा और विकसित हुई। उस काल में नक्षत्रों की आकृति, स्वरूप, गुण एवं प्रभाव का बोध करने वाले शास्त्र को ज्योतिष शास्त्र कहा जाने लगा। कालांतर में नक्षत्र, लग्न, दिनमान, ऋतु, अयनादि के शुभाशुभ फल के अनुसार कार्यों का विवेचन भी ज्योतिष शास्त्र की परिभाषा में समाविष्ट हो गया। ज्योतिष की यह परिभाषा ग्रह, नक्षत्र, राश्यादि के स्वरूप, वर्ण, धातु, तत्त्व एवं दिशा आदि के विवेचन से और भी व्यापक हो गई।

[1] किरातार्जुनीय
[2] किरातार्जुनीय, घण्टापथ टीका, मङ्गलाचरण,

ज्योतिष शास्त्र का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। यह ज्योतिष शास्त्र ही है जिसके आधार पर विश्व के आद्यतम साहित्य के रूप में वेदों के कालनिर्धारण का प्रयत्न किया गया। ऋग्वेद में लगभग 95 हजार वर्ष पूर्व की ग्रह गति का उल्लेख प्राप्त होता है। इसी को आधार मान कर लोकमान्य तिलक आदि ने विद्वानों ने ज्योतिष शास्त्र के प्राचीनतम स्वरूप को स्वीकार किया। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो ज्योतिष एक वैज्ञानिक चिंतन है; जो कि मानव जीवन के भूत, वर्तमान एवं भविष्य से अविच्छिन्न रूप से सम्बद्ध है। ज्योतिष शास्त्र के अनुसार ग्रहनक्षत्रादि से मानव जीवन निश्चित रूप से प्रभावित होता है। ज्योतिष शास्त्र के शुभाशुभ फलबोधक स्वरूप को छोड़ भी दें तो इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि मानव के जीवन में समय बोध हेतु दिन, सप्ताह, पक्ष, मास, ऋतु, वर्ष आदि का ज्ञान दैनंदिन ज्योतिष शास्त्र के अभाव में असंभव है। ज्योतिष शास्त्र मानव जीवन के व्यावहारिक पक्ष को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। निम्न पद्य में ज्योतिष के प्रत्यक्ष स्वरूप का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है -

अप्रत्यक्षाणि शास्त्राणि विवादस्तत्र केवलम्।
प्रत्यक्षं ज्योतिषं शास्त्रं चंद्रार्कौ यत्र साक्षिणौ।।[3]

आरम्भ में ज्योतिषकरंडक एवं वेदांग ज्योतिष ग्रंथों की रचना के बाद ज्योतिषशास्त्र के गणित एवं फलित भेद स्पष्ट हो गए। गणित ज्योतिष के अंतर्गत ग्रहों की गति, स्थिति, अयनांश आदि एवं फलित के अंतर्गत शुभाशुभ समय, स्थान आदि का निर्धारण किया जाने लगा। कालान्तर में व्यवहार एवं उपयोगिता की दृष्टि से ही ज्योतिष शास्त्र को 'त्रिस्कंध ज्योतिष' के रूप में विभक्त किया जाता है -

सिद्धान्त-संहिता-होरारूपं स्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्मलं चक्षुः ज्योतिः शास्त्रमनुत्तमम्॥

इस प्रकार सिद्धांत, संहिता और होरा शास्त्र के रूप में ज्योतिष शास्त्र का विस्तार हुआ। हालांकि बाद में ही यह और भी परिवर्धित होकर सिद्धांत, संहिता, होरा, प्रश्न और निमित्त के रूप में पंचरुपात्मक हो गया। कालान्तर में वैदेशिक संस्कृति के प्रभाव से ज्योतिष शास्त्र का क्षेत्र और भी विस्तृत होता गया। वर्तमान में ज्योतिष शास्त्र के अन्तर्गत सिद्धांत, संहिता, होरा, प्रश्न, निमित्त, सामुद्रिक शास्त्र, वास्तुशास्त्र आदि अनेक भेद समाविष्ट होते हैं। ज्योतिषशास्त्र खगोल, गणित, दर्शन, कृषि, आयुर्वेद आदि शास्त्रों से प्रत्यक्षतः संबद्ध रहा है। इसके साथ ही भारत की प्राचीन ज्ञान परंपरा के अन्तर्गत यह शास्त्र प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष से रूप से अन्य सभी शास्त्रों से भी संबंधित है।

3

- **किरातार्जुनीयस्थ ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्व -**

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य में विविध स्थलों पर अनेक शास्त्रों के साथ ही ज्योतिषशास्त्रीय तत्वों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। महाकवि भारवि ने इस महाकाव्य में प्रसङ्गानुसार ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित अनेक विषयों का उल्लेख किया है। जिसके अन्तर्गत सूर्यादि ग्रह और उनके शुभाशुभत्व से सम्बन्धित योगावयोगों का उपमा-श्लेषादि अलंकार समन्वित प्रयोग करके कवि ने अपने काव्यकौशल के साथ ही ज्योतिषीय ज्ञान का भी प्रमाण प्रस्तुत किया है। इनमें सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतुवर्णन आदि के प्रसङ्ग-वर्णन के साथ ही सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि की उपमा देने हेतु तथा अनेक दूसरे सन्दर्भों में महाकवि भारवि के द्वारा अनेक प्रकार के ज्योतिषतत्त्वों का उल्लेख किया गया है। किरातार्जुनीय महाकाव्य के इन प्रसङ्गों में भारवि ने ज्योतिषशास्त्र के किसी एक पक्षविशेष का नहीं अपितु सिद्धान्त, संहिता, होरा, मुहूर्त, शकुन तथा सामुद्रिक शास्त्र जैसे सभी प्रमुख विभागों से सम्बन्धित तत्त्वों का उल्लेख किया है। प्रस्तुत शोधपत्र में किरातार्जुनीय में उल्लिखित ज्योतिषशास्त्रीय तत्त्वविषयक पद्यों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत है। वेदव्यास के शरीर सौष्ठव का वर्णन करते हुए महाकवि भारवि ने शरत्कालीन चन्द्र की उपमा का उल्लेख किया है –

ततः शरच्चन्द्रकराभिरामैरुत्सार्पिभिः प्रांशुमिवांशुजालैः।
बिभ्राणमानीलरुचं पिशंगीर्जटास्तडित्वन्तमिवाम्बुवाहम्॥[4]

किरातार्जुनीय महाकाव्य के कथाप्रसङ्ग में कवि ने ज्योतिषशास्त्र के सामुद्रिकशास्त्र से सम्बद्ध अनेक विषयों का समावेश भी किया है। कवि भारवि ने मनुष्य के शरीराङ्गों के आकार-वर्ण-चिह्न-लक्षणानुसार, उसमें भी विशेषतः हस्तरेखा से सम्बन्धित शुभाशुभत्व का फलकथन विभिन्न प्रसङ्गों में किया है। वेदव्यास के शरीराङ्गों का वर्णन करते हुए भारवि ने सामुद्रिकशास्त्रानुगत शारीरिक लक्षणों का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है –

प्रसादलक्ष्मीं दधतं समग्रां वपुःप्रकर्षेण जनातिगेन।
प्रसह्य चेतःसु समासजन्तमसंस्तुतानामपि भावमार्द्रम्॥
अनुद्धताकारतया विकिक्तां तन्वन्तमन्तःकरणस्य वृत्तिम्।
माधुर्यविस्रम्भविशेषभाजा कृतोपसंभाषमिवेक्षितेन॥[5]

इसी प्रकार अर्जुन के शारीरिक सौष्ठव के गुणों एवं शुभलक्षणों का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं –

रुचिराकृतिः कनकसानुमथो परमः पुमानिव पतिं पतताम्।
धृतसत्पथस्त्रिपथगामभितः स तमारुरोह पुरुहूतसुतः॥[6]

[4] किरातार्जुनीयम्, 3.1.
[5] किरातार्जुनीयम्, 3.2-3
[6] किरातार्जुनीयम्, 6.1.

सामुद्रिकशास्त्र में विशाल भुजाओं वाले मनुष्य के विख्यात भूपति होना माना जाता है। निम्नोक्त पद्य में रवि ने सामुद्रिकशास्त्रोक्त गुणों के अनुरूप अर्जुन की विशाल भुजाओं का उल्लेख किया है –

स बिभर्ति भीषणभुजग्भुजः पृथु विद्विषां भयविधायि धनुः।
अमलेन तस्य धृतसच्चारिताश्चरितेन चातिशयिता मुनयः॥[7]

किरातार्जुनीय महाकाव्य में महाकवि भारवि ने सुराङ्गनाओं के शारीरिक सौन्दर्य के प्रसङ्ग का अत्यन्त मनोहारी वर्णन किया है। जिसमें कवि ने उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गों का सूक्ष्म विवेचन किया है। इस शृङ्गार वर्णन में कवि ने सौन्दर्यवती स्त्री के सामुद्रिकविद्यागत लक्षण उपन्यस्त किए गए हैं। किरातार्जुनीय महाकाव्य के निम्न पद्य में ज्योतिषशास्त्र के सामुद्रिक विद्या के सिद्धान्त के अनुगुण सौन्दर्यवती स्त्री के प्रियतम के मन को आकृष्ट करने वाले अङ्ग लक्षणों का उल्लेख करते हुए कवि कहते हैं –

कलत्रभारेण विलोलनीविना गलद्दुकूलस्तनशालिनोरसा।
वलिव्यपायस्फुटरोमराजिना निरायतत्वादुदरेण ताम्यता॥
विलम्बमानाकुलकेशपाशया कयाचिदाविष्कृतबाहुमूलया।
तरूप्रसूनान्यपदिश्य सादरं मनोधिनाथस्य मनः समाददे॥[8]

इसी प्रकार और भी –

विसारिकाञ्चीमणिरश्मिलब्धया
मनोहरोच्छ्रायनितम्बशोभया।
स्थितानि जित्वा नवसैकतद्युतिं
श्रमातिरिक्तैर्जघनानि गौरवैः॥
समुच्छ्वसत्पङ्कजकोशकोमलै-
रुपाहितश्रीण्युपनीवि नाभिभिः।
दधन्ति मध्येषु वलीविभङ्गिषु –
स्तनातिभारादुदराणि नम्रताम्॥[9]

सामुद्रिकशास्त्र के अन्तर्गत पराक्रमी पुरुष के अनेक शारीरिक लक्षण बताए गए हैं। किरातार्जुनीय में इन्द्रकील पर्वत पर पराक्रमी अर्जुन के पदचिह्नों के दर्शन मात्र से देवाङ्गनाओं को अर्जुन की उपस्थिति के ज्ञान का उल्लेख प्राप्त होता है –

सचकितमिव विस्मयाकुलाभिः शुचि-
सिकतास्वतिमानुषाणि ताभिः।

---
[7] किरातार्जुनीयम्, 6.32.
[8] किरातार्जुनीयम्, 8.17-18
[9] किरातार्जुनीयम्, 8.23-24

क्षितिषु ददृशिरे पदानि जिष्णो-
रुपहितकेतुरथाङ्गलाञ्छनानि ॥[10]

उक्त प्रसङ्ग में कवि ने सामुद्रिक विद्यानुगुण पराक्रमी अर्जुन के पदचिह्नों का वर्णन किया है। कवि कहते है कि देवाङ्गनाओं ने इन्द्रकील पर्वत पर ध्वजा और चक्र रेखाङ्कित पदचिह्नों को विस्मय से देखा। जिससे उन्हें वहां अर्जुन के उपस्थित होने की अनुभूति हुई। सामुद्रिकशास्त्र के अनुसार पादतल में ध्वज, तोरण, चक्र, अङ्कुश या कुलिश की रेखा से अङ्कित व्यक्ति अत्यन्त पराक्रमी राजा होता है। सामुद्रिकशास्त्र में स्कन्ध के लक्षणाकृति विशेष से भी व्यक्ति के पराक्रमी राजा होने का फलकथन किया जाता है। वराहमिहिर ने राजाओं के स्कन्धलक्षण का इस प्रकार उल्लेख किया है – **षण्ढस्कन्धो गजस्कन्धः कदलीस्कन्ध एव च।**[11] अधोलिखित पद्य में कवि ने किरात-शिव के शारीरसौष्ठव का वर्णन करते हुए उनके स्थिर, दृढ एवं नत स्कन्ध का उल्लेख किया है। इसके साथ ही भारवि कहते हैं कि भगवान् शिव के मुखमण्डल की कान्ति चन्द्रप्रभा के समान उज्ज्वल है –

अंसाववष्टब्धनतौ समाधिः शिरोधराया रहितप्रयासः।
धृता विकारांस्त्यजता मुखेन प्रसादलक्ष्मीः शशलाञ्छनस्य ॥[12]

इस प्रकार उपर्युक्त विवरण के अनुसार स्पष्ट है कि किरातार्जुनीय महाकाव्य में ज्योतिष के अनेक पक्षों से सम्बद्ध सिद्धान्तों एवं लक्षणों का वर्णन किया गया है। जिनके विवेचन से यह भी ज्ञात होता है कि महाकवि भारवि को ज्योतिषशास्त्र के किसी एक अङ्ग विशेष का ही ज्ञान नहीं था, अपितु वे ज्योतिषशास्त्र के सभी अङ्ग-उपाङ्गों के ज्ञाता थे। ज्योतिषशास्त्र के सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान होने पर ही भारवि ने सिद्धान्त-संहिता-होरारूपी स्कन्धत्रय के अतिरिक्त मुहूर्त, शकुन एवं सामुद्रिक शास्त्र से सम्बन्धित उल्लेख किरातार्जुनीय महाकाव्य में किया है।

*शोधार्थी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।
**शोधपर्यवेक्षक, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

[10] किरातार्जुनीयम्, 10.7
[11] बृहत्संहिता, पृ. 424
[12] किरातार्जुनीयम्, 16.21